संजीव कुमार सीडी प्रकरण कितना अनैतिक कितना अपराध

दिल्ली सरकार के एक मंत्री संजीव कुमार की एक सीडी प्रकाश में आयी, जिसमें वे कुछ अलग अलग महिलाओं के साथ अवैध शारीरिक संबंध बनाते हुए दिखे। यह भी स्पष्ट हुआ है कि सीडी उन्होने खुद ही बनाई थी। सीडी प्रकाश में आते ही दिल्ली के मुख्यमंत्री ने तत्काल प्रभाव से उन्हें दोषी मानते हुए मंत्रिमंडल से निकाल दिया। दूसरी ओर दिल्ली के ही एक प्रभावशाली आप नेता ने संजीव कुमार के आचरण को साधारण गलती घोषित कर दिया। उन्होंने संजीव कुमार के कार्य को साधारण गलती सिद्ध करने के लिए गॉधी,नेहरु,लोहिया, बाजपेयी सरीखे नेताओं की ऐसी ही कथित गलतियों को आधार बनाया। अच्छा हुआ कि उन्होने संजीव कुमार को निर्दोष सिद्ध करने के काम में देवताओं की गलतियों को शामिल नहीं किया। मैं नहीं कह सकता हूॅ कि आप पार्टी के ही दो वरिष्ठ नेताओं के अलग अलग मत किसी योजना के अन्तर्गत आये अथवा स्वाभाविक रुप से किन्तु मैं आश्वस्त हूॅ कि दोनों ही नेता पागलपन की ओर हैं। एक तो पागल माने ही जा रहे है, किन्तु दूसरे के विषय में अभी तब तक प्रतिक्षा करनी होगी जब तक उनका प्रधानमंत्री बनने का सपना नहीं टूट जाता। इसलिए इन विपरीत टिप्पणियों पर गंभीरता से सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी सारे देश में इस प्रकरण को आधार बनाकर एक बहस छिड गई है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण को किस सीमा तक अनैतिक माना जाये और किस सीमा के बाद अपराध। मैं जानता हूॅ कि अब तक ऐसी किसी सर्वसम्मत सीमा का निर्धारण नहीं हो सका है और इसलिए इस मुददे पर गंभीर विचार मंथन करना होगा।

व्यक्ति एक मूल इकाई है तथा अन्य सभी इकाईया व्यवस्था की इकाई मानी जाती है। व्यक्ति को तीन प्रकार के अधिकार प्राप्त होते है–1 प्राकृतिक अधिकार 2 संवैधानिक अधिकार 3 सामाजिक अधिकार। व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन अपराध, संवैधानिक का उल्लंघन गैरकानूनी तथा सामाजिक का उल्लंघन अनैतिक माना जाता है। अपराध को रोकना, समाज तथा सरकार का संयुक्त उत्तरदायित्व माना जाता है। गैरकानूनी काम को रोकना सरकार का उत्तरदायित्व होता है तथा अनैतिक को रोकना समाज का उत्तरदायित्व होता है। अनैतिक रोकने में सरकार की भूमिका स्वैच्छिक कर्तव्य तक सीमित होती है,दायित्व नहीं।

भ्रष्टाचार की एक ही परिभाषा होती है कि मालिक से छिपाकर यदि अपने हित में कोई कार्य किया जाये तो वह भ्रष्टाचार होता है। ऐसा भ्रष्टाचार मालिक के प्रति ही अपराध होता है किसी अन्य के प्रति नहीं। किसी सरकारी कर्मचारी को जनता नियुक्त नहीं करती बल्कि सरकार नियुक्त करती हैं। ऐसे कर्मचारी का भ्रष्टाचार समाज के लिए किसी प्रकार का अपराध नहीं माना जा सकता क्योंकि उसे समाज ने नियुक्त नहीं किया है किन्तु किसी विधायक को समाज ने नियुक्त किया है और यदि विधायक का कोई कार्य भ्रष्टाचार में आता है तो वह अपराध होगा। क्योंकि विधायक ने समाज के साथ विश्वासघात किया है, अमानत मे खयानत की है। विधायक का पद समाज की अमानत है। विचारणीय यह है कि एक विधायक ने किसी अन्य महिला से यदि अनैतिक संबंध बनाये तो यह मामला उसकी पत्नी के साथ विश्वासघात का हो सकता है समाज के साथ नहीं, सरकार के साथ भी नहीं। यदि पत्नी आपत्ति न करें तो उसका कार्य किसी भी स्थिति में अनैतिक ही होगा,अपराध नहीं, और गैरकानूनी भी नहीं। किन्तु यदि उक्त विधायक ने किसी भी रुप में अनैतिक संबंध बनाने में अपनी राजनैतिक हैसियत का उपयोग किया तो यह स्पष्ट रुप से समाज के साथ विश्वासघात होगा अर्थात अपराध होगा।

अब तक कोई ऐसी बात नहीं आयी है कि संजीव कुमार ने अनैतिक संबंध बनाने के लिए किसी महिला को पैसे दिये हो अथवा कोई व्यक्तिगत वादा किया हो। यदि ऐसा होता तो यह कार्य अनैतिक ही होता, अपराध नहीं। किन्तु कुछ ऐसी बाते भी सुनी गई है कि संजीव कुमार ने इस मामले में अपनी राजनैतिक हैसियत का उपयोग किया। ऐसी परिस्थिति में उक्त कार्य अनैतिक नहीं कहा जा सकता। बल्कि साफ साफ अपराध की श्रेणी में आता है। यदि किसी मंत्री को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है किन्तु वह विधायक नहीं है तब तक वह कार्य सरकार की दृष्टि से ही गलत होगा तथा गैरकानूनी होगा ,अपराध नहीं। किन्तु यदि कोई विधायक मंत्री भी बन जाता है और वह दोनों पदो पर रहकर ऐसा अनैतिक कार्य करता है तो वह और भी अधिक गंभीर माना जायेगा।

यह भी पता चला है कि वह सीडी संजीव कुमार ने खुद बनाई थी। यदि उसने वह सीडी उक्त महिलाओं को भविष्य में ब्लैकमेल करने की नीयत से बनाई थी तो वह कार्य और अधिक गंभीर अपराध बन

जायेगा। अपराध यह नहीं है कि उसने किसी अन्य महिला के साथ संबंध बनाये । यदि सीमा उल्लंघन ऐसे संबंधो तक होता तो कार्य अनैतिक सीमा से आगे नहीं जाता। भले ही उक्त व्यक्ति विधायक मंत्री या प्रधानमंत्री ही क्यों न हो। किन्तु यदि समाज द्वारा प्राप्त पद का उपयोग करते हुए इस प्रकार के संबंध बनाये गये तो वह कार्य पूरी तरह अपराध माना जायेगा।

अपराध किस सीमा तक हुआ यह जांच का विषय है संजीव कुमार ने तो यह भी कह दिया कि सीडी फर्जी है। मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता किन्तु मैं इतना अवश्य कह सकता हूॅ कि यदि वह सीडी सही है तथा महिलाओं के उपयोग करने में व्यक्तिगत से अधिक हैसियत का उपयोग हुआ तो उक्त कार्य सामाजिक अपराध की श्रेणी में माना जायेगा, अनैतिक नहीं।

आज पूरे देश में अनैतिक, गैरकानूनी और अपराध पर एक बहस छिडी हुई है। मैं समझता हूॅ कि इन तीनों स्थितियों का अलग अलग विवेचन और सीमाओं का कोई स्पष्ट निर्धारण साफ नहीं दिखता । राजनेता तो इस संबंध में कुछ जानते ही नहीं है। यहॉ तक कि न्यायपालिका भी तीनों के विषय में अलग अलग कुछ नहीं समझती। जो समझते है उनकी कोई हैसियत नहीं है कि यह मुददा बहस में आ सके। यही कारण है कि हमारे तंत्र से जुडे तीनों प्रतिष्ठान जब चाहे तब अनैतिक को अपराध और गंभीर अपराध भी घोषित कर देते है। इसी तरह वे जब चाहे तब अपराध को अनैतिक भी मान लेते है क्योंकि उन्हें इतना ज्ञान ही नहीं है कि कब अनैतिक अपराध होता है और कब तक अनैतिक। पिछले कुछ समय से महिला पुरुष के संबंधो को इतना अधिक संवेदनशील घोषित कर दिया गया है तथा उसके लिए इतने अधिक कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है जो इनकी नासमझी का प्रतीक है। यदि दो स्त्री पुरुष किसी लोभ लालच में भी अथवा किसी अन्य आश्वासन के बाद भी अनैतिक संबंध बनाते है तो उक्त संबंध तब तक अपराध नहीं जब तक उसमें कोई बलप्रयोग न हो। आज तो यह स्थिति हो गई है कि किसी महिला के साथ वर्षो तक संबंध बनाने के बाद भी हमारे तंत्र से जुडे नासमझ लोग उसे बलात्कार कह कर अपराध की श्रेणी में डाल देते है। कितना मूर्खतापूर्ण तर्क है कि उक्त पुरुष ने महिला को शादी करने का आश्वासन दिया था । मुझे दया आती है ऐसे मूर्खतापूर्ण कानून बनाने वालो और उसका समर्थन करने वालो के प्रति। मैं चाहता हूॅ कि अनैतिक गैरकानूनी और अपराध पर पूरे देश में एक बहस छिड़नी चाहिए। यदि ऐसा न भी हो तो कम से कम महिला पुरुष के अवैध संबंधो में कितना और कब अनैतिक तथा अपराध पर तो एक बहस छिडनी ही चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पता नहीं कितने अनैतिक लोग जेलों में बंद हो जायेंगे और कितने अनैतिक लोग किसी फांसी पर चढ़ जायेंगे। पता नहीं कितनी आपराधिक चरित्र की महिलाये ऐसे मूर्खतापूर्ण कानूनों का दुरुपयोग करेंगी और तब यह भी संभव है कि हमारे ये नासमझ लोग इन कानूनों को बदलने की पहल करेंगे।

महिला सशक्तिकरण का नारा कितना घातक

कल का लेख का समापन करते हुए मैंने यह लिखा था ''मैं चाहता हूॅ कि अनैतिक गैरकानूनी और अपराध पर पूरे देश में एक बहस छिड़नी चाहिए। यदि ऐसा न भी हो तो कम से कम महिला पुरुष के अवैध संबंधो में कितना और कब अनैतिक तथा कब अपराध पर तो एक बहस छिडनी ही चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो पता नहीं कितने अनैतिक लोग जेलों में बंद हो जायेंगे और कितने अनैतिक लोग किसी फांसी पर चढ़ जायेंगे। पता नहीं कितनी आपराधिक चरित्र की महिलाये ऐसे मूर्खतापूर्ण कानूनों का दुरुपयोग करेंगी''

आज ही आपने उसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी देख लिया । मुझे ऐसा लगता है कि जिस महिला ने आकर संजीव कुमार के विरुद्ध बलात्कार का आरोप लगाया है वह आरोप लगभग असत्य दिखता है। आमतौर पर पाया जाता है कि अधिकांश महिलाये सहमत संबंधों की घटनाओं को प्रकाश में आने के बाद झूठे आरोप लगाकर अपनी प्रतिष्ठा बचाने का प्रयास करती है। सच्चाई तो कानूनी और न्यायिक प्रकिया पूरी होने के बाद ही स्पष्ट हो पायेगी, किन्तु प्रथम दृष्टया महिला झूठ बोलती लगती है।

मेरा ऐसा मत है कि यदि किसी वर्ग विशेष को कोई विशेष अधिकार दिये जाते है तो उस वर्ग विशेष के चालाक लोग उस विशेषाधिकार का दुरुपयोग करते है। यह सिद्धांत महिलाओं पर भी समान रुप से लागू होता है।

एक समय था जब पुरुषों को विशेषाधिकार दिये गये । तब उसमें भी चालाक लोगों ने उसका दुरुपयोग किया। अब महिलाओं को ऐसे ही विशेषाधिकार दिये गये है और स्वाभाविक है कि चालाक लोग इन विशेषाधिकारों का दुरुपयोग कर भी रहे है और करेंगे भी ।

मैं अब तब नहीं समझा कि महिला सशक्तिकरण जैसी भेदभाव मूलक कानूनी धारणा क्यों प्रोत्साहित की जा रही है जबकि संविधान के अनुसार सबको समान अधिकार प्राप्त हो चुके है। यह कार्य तो समाज का है, सरकार का नहीं, कानून का नहीं। महिला सशक्तिकरण की बात तो पुरुषों को समझायी जानी चाहिए थी, महिलाओं को नहीं। किन्तु मैं देख रहा हूॅ कि महिलाओं को सशक्तिकरण समझाया जा रहा है। जिसके कारण वर्ग विद्वेश वर्ग संघर्ष की स्थिति पैदा हो रही है। यह कथन पूरी तरह गलत है कि समाज या सरकार, कानून या संविधान महिलाओं की स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर सकता और इसलिए उन्हें अपनी रक्षा करने के लिए आगे आना चाहिए । इससे टकराव और अव्यवस्था बढेगी। मैं देख रहा हूॅ कि वोटो की लालच में मोदी जी भी महिला सशक्तिकरण जैसे घातक नारे का उपयोग करने में अन्य राजनेताओं की तरह ही आगे आगे चल रहे है। यह प्रवृत्ति घातक है। आये दिन चालाक महिलाए इस महिला सशक्तिकरण की धारणा का दुरुपयोग कर रही है। संजीव कुमार के विरुद्ध महिला द्वारा किया गया दोषारोपण भी इसका स्पष्ट उदाहरण हैं।

सीवान के बाहुबली की रिहाई, क्या समस्या? क्या समाधान?

सीवान के बाहुबली नेता शहाबुद्दीन की जेल से जमानत पर रिहाई हो गई। उन पर पचासों गंभीर अपराधों के मुकदमे लंबित हैं। इसके बाद भी हर मामले में उनकी जमानत सम्पूर्ण प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्था पर गंभीर सवाल खडे करती है। प्रश्न उठेगा कि यदि जमानत पर छूटने के बाद भी शहाबुद्दीन कोई गंभीर अपराध करता है तो उसके लिये न्यायपालिका को भी अपराधी क्यो न माना जाये?

इस मामले में मेरा कुछ व्यक्तिगत अनुभव भी है। एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति की हत्या करा दी। जेल में बंद हो गया। दो लोग गवाही देने के लिए सामने आये । न्यायालय में गवाही के पूर्व ही उस व्यक्ति ने जेल से ही व्यवस्था करके उन गवाहो में से एक की हत्या करा दी। मृतक गवाह के परिवार के एक सदस्य ने गवाही देने की हिम्मत की ,कुछ महिने बाद उक्त गवाह की भी हत्या करा दी गई। परिणाम हुआ कि पहली हत्या का बचा एक गवाह भी न्यायालय में गवाही देने से पलट गया तथा तीसरी हत्या के विरुद्ध तो कोई गवाही मिली ही नहीं। 3–3 हत्याओं में शामिल अपराधी न्यायालय से निर्दोष सिद्ध हुआ। आज भी सच्चाई यह है कि उक्त अपराधी के आदेश को कोई इन्कार नहीं कर सकता क्योंकि वह व्यक्ति एक विख्यात दादा घोषित हो चुका है। ऐसी घटनाएॅ किसी एक प्रदेश की नहीं है, न ही किसी एक जिले की है। यह अलग बात है कि यूपी बिहार में ऐसी स्थिति एक सीमा से भी बहुत आगे तक जा चुकी है और अन्य प्रदेशों में धीरे धीरे बढ़ रही है। यदि किसी व्यक्ति ने एक बार गवाही देने वालों में भय पैदा कर दिया तथा अल्पकालिक जेल का खतरा उठा लिया तो न्याय और कानून के लम्बे हाथ अपने आप बौने हो जाते है और अपराधी के हाथ बहुत लम्बे हो जाते है।

पूरे देश में न्यायिक सक्रियता की बात जोर शोर से उठती है। भारत की न्यायपालिका सहारा प्रमुख सुब्रत राय,आशाराम बापू,संजय दत्त जैसी नामी हस्तियों को लम्बे समय तक जेल में रखकर अपनी पीठ थपथपाते रही है। मैंने स्वयं देखा है कि एक सामान्य सा व्यक्ति भूलवश गांजे के पौधे उगा लेने के कारण कई कई वर्षो से जेल में बंद है। इसका अर्थ हुआ कि साधारण से अपराध में भी न्यायपालिका बहुत कठोर कदम उठाने के लिए सक्रिय है, भले ही कोई व्यक्ति कितना भी बडा आदमी क्यों न हो। धनी हो, सम्मानित हो तो न्यायपालिका विशेष सक्रिय हो जाती है। दूसरी ओर वही न्यायपालिका ऐसे अपराधियों को जिनके खिलाफ कोई गवाही देने वाला नहीं है उन्हें या तो बाइज्जत बरी करती है या शीघ्रातिशीघ्र जमानत पर छोड देती है। ऐसा जमानत पर छूटा अपराधी भले ही 10–20 बार वैसे ही अपराध क्यों न करें, किन्तु वह तब तक निर्दोष सिद्ध होता रहेगा जब तक कोई गवाह अपनी जान जोखिम में डालकर गवाही देने को तैयार न हो। मैंने एक मामले में सरगुजा जिले में ही न्यायपालिका और पुलिस की बहादुरी प्रत्यक्ष देखी है। एक बहुत बडे आतंकित करने वाले अपराधी को गॉव के लोगों ने मजबूर होकर मार दिया, जो पुलिस और न्यायालय उस अपराधी को कई अपराधों

के बाद भी जेल में नहीं रख सकी। उसी पुलिस और न्यायपालिका ने उक्त अपराधी की हत्या करने वाले गॉव के भोले भाले नागरिको पर अपना सारा कानून प्रयोग कर दिया। लम्बे समय तक उनकी जमानत नहीं हुई, और आगे क्या हुआ यह मुझे नहीं मालूम । मेरे एक मित्र को कुछ बाहुबलियो ने खतरनाक स्थिति तक पीटा । मुकदमे मे मार खाने वाले को अपनी जान बचाने के लिये गवाही बदलनी पडी।

यदि हम पूरे देश की बात करें तो न्यायपालिका तथा पुलिस की स्थिति साफ दिखती है। जो बाहुबली है वे कानून से उपर हैं। उन्हें न न्यायालय दण्ड दे पाता है, न ही पुलिस कुछ कर पाती है। दूसरी ओर जो लोग कुछ छोटे मोटे कानून तोडते है उन्हें सबक सिखाने में दोनों ही इकाईया बहुत आगे आगे दौडती है। मैने देखा है कि हमारे क्षेत्र के नक्सली या तो पुलिस की पकड में नहीं आते थे या गवाही के अभाव में वे निर्दोष छूट जाते थे और पुनः वैसा ही अपराध करते थे किन्तु नक्सलियों को किसी मजबूरी में अथवा जान के भय से भी सहायता करने वाले सामान्य लोग जेल में सडते रहते है। क्योंकि बाहुबली कानून से उपर होते है और सामान्य लोग कानून से नीचे। पंजाब में जब आतंकवादियों ने स्वयं को कानून से उपर बनाया तब पुलिस ने कानून तोडकर पंजाब को आतंकवाद से मुक्त कराया। छ0ग0 का सरगुजा जिला भी कानून तोडकर ही नक्सलवाद से मुक्त हुआ तथा बस्तर में भी लगभग वही प्रक्रिया जारी है। पंजाब में जब साम्प्रदायिक सिक्खों ने कानून से उपर होने का वातावरण बनाया तो कानून तोडकर ही उनका मनोबल गिराया गया। यही कहानी गुजरात में भी दुहराई गई। प्रश्न उठता है कि क्या इस तरह कानून की रक्षा करने के लिए कानून तोडना एक उचित मार्ग हैं? यदि नहीं है तो क्या ऐसे कानून से उपर रहने वाले बाहुबलियों या संगठनों की गुलामी सहना उचित हैं? क्या कारण है कि बाहुबलियों और आतंकवादियों के समक्ष लाचार कानून सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षाकृत छोटी गलतियों के लिए भी कठोर दण्ड देना उचित समझता है। गलत कौन है न्यायपालिका या विधायिका यह निर्णय करना हमारा काम नहीं है। किन्तु हम इतना अवश्य कह सकते है कि इस मामले में हम गलत नहीं है।

भारत में संविधान का शासन है। इसका अर्थ हुआ कि कही न कहीं संविधान में भी कोई त्रुटि रही होगी। क्या त्रुटि है यह नहीं मालूम किन्तु है अवश्य। न्यायपालिका और विधायिका वर्तमान समय में अपने को संविधान से भी उपर सिद्ध करने की दौड में लगे हुये है। ये दोनों इस प्रतिस्पर्धा को छोडकर पहले इस समस्या को क्यों नहीं सुलझाते कि कानून से उपर कोई नहीं रहेगा, चाहे वह कितना भी बडा बाहुबली ही क्यों न हो। न्यायपालिका सबसे पहले यह सर्वे क्यो नही करवाती कि कितने प्रतिशत अपराधी अपराध करने के बाद भी न्यायालय से निर्दोष छूट रहे है तथा उसका क्या समाधान है। क्यो नही विधायिका से पूछा जाता कि इस संबंध मे आपकी क्या योजना है। न्यायपालिका हर मामले में प्रशासनिक आदेश भी जारी करती है। न्यायपालिका राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के विरुद्ध भी टिप्पणी करती है। न्यायपालिका जनहित याचिकाओं पर भी निर्णय देती है। किन्तु कहीं न्यायपालिका गवाही के अभाव में अपराधियों के निर्दोष छूट जाने का समाधान खोजने का प्रयास नहीं करती। क्या न्यायालय की नजर में यह प्रयास जनहित से जुडा नहीं है?

हम लोगों ने एक प्रश्न उठाया है और मैं जानता हूँ कि इसका समाधान वर्तमान समय में भारत की विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका के पास नहीं है क्योंकि न तो 70 वर्षो तक उन्होने कभी इस विषय पर सोचा और न ही वर्तमान में सोच रहे है क्योकि इस समस्या का प्रभाव तंत्र पर तो नहीं पड रहा। तंत्र की तीनों इकाईयॉ एक दूसरे पर दोषारोपण करके अपने को पाकसाफ सिद्ध करते रहती है किन्तु परिणाम तो हमें भुगतना पडता है और इसलिए इसका समाधान हमें ही खोजना होगा।

मेरे विचार में एक समाधान संभव है। किसी जिले का कलेक्टर, जिला जज तथा एस पी सर्वसम्मति से तथा गुप्त रुप से इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उस जिले की सीमा में सामान्य लोग रिपोर्ट करने या गवाही देने से भयभीत हैं। तो उक्त जिले को सीमित अवधि के लिए विशेष क्षेत्र घोषित कर सकते है। उस जिले की गुप्तचर पुलिस को यह विशेष अधिकार होगा कि वह कुछ विशेष मामलों में गुप्त रुप से गुप्तचर न्यायालय में मुकदमा प्रस्तुत करे। उक्त मुकदमें की विवेचना भी गुप्तचर न्यायालय स्वतंत्र रुप से करें तथा बिना प्रत्यक्ष मुकदमा चलाये उक्त गुप्तचर न्यायालय अपराधी को उपयुक्त दण्ड घोषित कर दे। उक्त घोषित दण्ड की अपील उच्चतम न्यायालय तक हो सकती है किन्तु उच्चतम न्यायालय की सुनवाई भी गुप्तचर न्यायालय ही करेगा। मेरे विचार में

यह सहज सरल सफल मार्ग है। मैं जानता हूँ कि अनेक लोगों को इसमें लोकतंत्र की कमजोरी दिखेगी किन्तु उनके पास कोई और अच्छा सुझाव न आज तक है न ही वे बताने की स्थिति में है। ऐसे लोगों की चर्चा करना अनावश्यक है जो न समाधान बतायेंगे और न ही बताने देंगे। किन्तु हम सब लोगों को बैठकर किसी न किसी मार्ग की तलाश करनी चाहिये।

उपरोक्त लेख की समीक्षा

मेरे कार्यालयीन साथियों की ओर से निम्नलिखित प्रश्न प्राप्त हुए । वे प्रश्न मेरे विचार सहित प्रस्तुत हैं।

1 आपने बाहुबली की जमानत की चर्चा करते हुए संपूर्ण प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्था को दोषी माना है। क्या विधायिका द्वारा निर्मित कानूनी व्यवस्था दोषी नही है। न्यायपालिका कानून के अनुसार न्याय करने को बाध्य है। कार्यपालिका द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ही उसका आधार है। साक्ष्य और प्रमाण के अभाव मे न्यायालय क्या कर सकता है?

2 आप अपने जिले के विषय मे बताइये कि वहां क्या हाल है । ऐसी परिस्थिति मे आप वहां क्या कदम उठाते है।

3 आपने आशाराम बापू, संजय दत्त सुब्रत राय सरीखे जेलो मे बंद या दंडित अपराधियों की चर्चा की। प्रश्न उठता है कि क्या इन्हे छोड देना चाहिये।

4 आपने नक्सलवाद, पंजाब के उग्रवाद, पंजाब की सिख साम्प्रदायिकता, गुजरात की मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदाहरण दिया । इस उदाहरण के द्वारा आप क्या सिद्ध करना चाहते है। आपके अनुसार इन मामलो मे कार्यपालिका ने कानून तोडकर जो कुछ किया क्या वह उचित है।

उत्तर– 1 भारत मे तंत्र का शासन है। यदि कोई अपराधी निर्दोष छूट जाता है तो अन्ततोगत्वा न्यायपालिका, कार्यपालिका, तथा विधायिका तीनो ही दोषी है। इन तीनो मे भी विधायिका अधिक दोषी है। क्योकि वह कानून भी बनाती है तथा कानून के पालन पर भी नजर रखती है। भारत की विधायिका आजतक यह नही समझ सकी की उसका दायित्व क्या है तथा उसका स्वैच्छिक कर्तब्य क्या हैं। उसने नासमझी मे कुछ पश्चिम के देशो की भी नकल की तो कुछ साम्यवादी देशो की भी। यदि स्वतंत्रता के बाद विधायिका ने नकल करने की बजाय अपना दिमाग लगाया होता तो ऐसी स्थिति नही आती। नासमझी के कारण विधायिका ने कर्तब्य को दायित्व समझ लिया तथा दायित्व को कर्तब्य । मै स्पष्ट कर दू कि सुरक्षा और न्याय तंत्र का दायित्व होता है तथा अन्य जन कल्याण के कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तब्य । वर्तमान समय मे आप समझ सकते है कि मेरा आरोप कितना सही है।

यह सही है कि यदि साक्ष्य और प्रमाण न मिले तो न्यायपालिका किसी को दंडित नही कर सकती । न्यायपालिका को संविधान के अनुसार कानून बनाने का कोई अधिकार नही है किन्तु भारत मे न्यायपालिका अनेक मामलो मे कानून भी बना रही है तथा लागू भी करा रही है। रोज ही न्यायपालिका अपनी सीमाएं तोडकर विधायिका और कार्यपालिका को प्रशासनिक आदेश जारी करती रहती है। वर्तमान समय मे तो मुझे अरूण जेटली जी का वह बयान तथ्य पूर्ण लगा जिसके अनुसार न्यायपालिका ने संसद को अधिकार विहीन बना दिया है तथा भविष्य मे बजट बनाने का काम भी उसे ही करना चाहिये। प्रश्न उठता है कि जब न्यायपालिका जनहित की परिभाषा खुद बनाने लगी और खुद ही उन्हे सीधा कार्यपालिका से लागू करवाने लगी तो इस एक मामले मे जिसमे अपराध नियंत्रण का गंभीर प्रश्न जुडा हुआ है, उसमे न्यायपालिका संविधान और परम्पराओं की दुहाई देकर नही बच सकती।

2 हमलोगों ने सिर्फ अपने शहर रामानुजगंज मे यह प्रयोग किया है अपने जिले के अन्य क्षेत्रो मे हम यह प्रयोग नही कर सके। मुझे गर्व है कि स्वतंत्रता के बाद आज तक रामानुजगंज मे कोई भी ऐसा अपराधी सिर नही उठा सका जिसके विरूद्ध गवाही देने मे लोग डरते हो। किन्तु यह बात भी सच है कि रामानुजगंज के बाहर के क्षेत्रो मे

मै स्वयं भी अपराधियों से डर कर रहता हूँ। अर्थात यदि छोटा मोटा अपराधी है तो नही डरता और कोई बडा नामी अपराधी हो तो मै उसके सामने झुक जाता हूँ।

3 मै यह नही कह रहा कि आशाराम बापु, संजय दत्त, सुब्रतराय सरीखे गलत करने वालो को निर्दोष छोड दिया जाय। किन्तु मै इस बात से सहमत नही कि तंत्र बाहुबली अपराधियों का तो कुछ न कुछ कर सके तथा छोटे अपराधियों पर अपनी सारी ताकत लगा दे। गांजा रखने वालो को 10 वर्ष की सजा, बलात्कार करने वाले को भी गंभीर दंड और बाहुबली को इसलिये छोड दिया जाये कि उसके विरूद्ध गवाही नही देते हे। इससे सहमत नही । भले ही छोटे अपराधियों को कम दंड हो किन्तु बडे बाहुबलियों को हर हालत मे दंडित होना ही चाहिये। मै देख रहा हूँ कि जो कार्य आम सांसद या न्यायाधीश छिप छिप कर करते रहते है वही काम करते हुए यदि कोई पकडा जाये तो उसके पीछे सब मिलकर इतनी ताकत लगा देते है कि उससे व्यवस्था मे पछपात दिखता है। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि ऐसे मामलो मे बहुत अधिक शक्ति लगाने का उददेश्य इन सबको अपनी प्रतिष्ठा बचाना रहता है जबकि आम तौर पर वे भी वैसा काम करते है।

4 मै इस बात के पक्ष मे नही कि कार्यपालिका समस्याओ के समाधान के लिये संविधान और कानून तोडकर कार्य करे। किन्तु यदि कानून और न्याय के बीच दूरी बढ जाये तथा न्यायपालिका कानून से चिपक जाये और न्याय की चिंता न करे तो जब तक कानून नही बदलते या न्यायपालिका न्याय शुरू नही करती तब तक कार्यपालिका कानून तोडकर भी यही न्याय करे तो मै उससे सहमत हूँ। जिस सोहराबुद्दिन या इशरत जहां को अनेक अपराधो मे दंडित नही किया जा सके, उसे यदि कार्यपालिका ने फर्जी मुटभेड मे मार दिया तो न्यायपालिका को ऐसे मामलो मे भी कानूनी औपचारिकता तक सीमित होना चाहिये। प्रतिष्ठा का प्रश्न नही बनाना चाहिये।

शाहबाज खान जी

विचारः— ज्ञानतत्व अंक 341 का पूर्ण पारायण किया। इस अंक में आपके विचार चार संदर्भो 1 परम्पराए और यथार्थ ,2 रघुराज राजन का अर्थशास्त्र, 3 इस्लाम प्रेरित व प्रायोजित कश्मीर समस्या तथा अंक की अवधि के अनुसार 4 तात्कालिक समाचार पर पढने को मिले। आपने बसपा नेता एवं केजरीवाल से जुडे समाचारों को अति संक्षेप में रखा है। इनमें मेरी विशेष रुचि नहीं है। क्योंकि ये दोनो ही अब राजनीति में पिटे मोहरे की छवि धारण कर चुके है। केजरीवाल तो इससे भी अधिक खोटा सिक्का या पॉलिटिकल विलेज जैसा अपना रुप बना चुका है। किसी खाद्य या पेय का अत्यधिक सेवन करने से जैसे आदमी को जब उस हद तक अरुचि हो जाती है कि उसे उल्टी होने लगती है बाद में उस पदार्थ की स्मृति मात्र से उपभोक्ता का जी मिचलाने लगता है। इसी पदार्थ की तरह केजरीवाल का रुप बन चुका है। यदि मैं उन्ही पर लिखने लगा तो मंतव्य से भटक जाउंगा और महंगाई रघुराजन तथा इस्लामोत्पन्न कश्मीर समस्या पर कुछ लिख नहीं सकुंगा।

आपके प्रथम विचार परम्पराए और यथार्थ से मैं पूर्ण सहमत हूँ। एक अच्छे लेखक के लक्षण के रुप में परम्पराओ और यथार्थ से महंगाई पर आना विवेचनाओं वैज्ञानिकता एवं कमबद्धता प्रदान करने वाला प्रयास है। महंगाई व रघुराजन पर आपने महंगाई को केन्द्र बनाकर रघुराजन के अर्थशास्त्री पर अच्छी समीक्षा और रघुराजन को केन्द्र बनाकर महंगाई पर अच्छी मीमांसा प्रस्तुत की है। परंम्पराएँ एवं महंगाई दो नितांत अलग अलग चीजे है पर आप द्वारा प्रस्तुत परम्पराओ पर विचार आपने महंगाई के विचार को भी हल्का सा स्पर्श कर रहा प्रतीत होता है। महंगाई और रघुराजन एक अर्थशास्त्री बनाम अर्थ प्रबंधक पर आपके विचारों से मैं पूर्णतः सहमत हूँ। मुझे लगता है कि मंहगाई के भरोसे भी हम लोग परंपरावादी बन चुके है। याने महंगाई चिल्लाने की हमारी परंम्परा बन चुकी है। किसी वस्तु का मूल्य मात्र एक रुपया बढा नहीं कि हम महंगाइ महंगाई गाने लगते है। भले ही इसी समय हमारी कयशक्ति 10रु बढ गये हो। सच तो यह है कि किसी परम्पराजन्य अज्ञान या अज्ञानताजन्य परंपरा का मैं भी अब तक शिकार रहा हूँ। मैंने स्वयं एक पत्र जिसे आपने इसी अंक में अंत में छापा है में आपको सुझाव दिया था कि पहले रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री रघुराम राजन से महंगाई पर बहस कर लो फिर अपने महंगे विचार को प्रसारित करें। आप दोनों महानभावों में बिना बहस हुए ही आपके तार्किक विवेचन से मैं निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि महंगाई पर व्यक्त आपके विचार महंगे होने के कारण महंगे है। पाठकगण इसे अन्यथा न समझे, न इसे मेरी

आत्मश्लाया समझे । जब मैं कहूँ कि मैनें भी संस्थागत छात्र के रुप में अपनी पहली डिग्री एम ए अर्थशास्त्र सन् 1978 में आगरा विश्व0 से अच्छे अंको में पास की थी। उस समय के आगरा विश्व0 का स्तर भी पुराने लोग जानते ही होंगे । मेरे अनुसार आधार वर्ष जो निश्चित रुप से अगले वर्ष होगा, की तुलना में इस वर्ष कम से कम 6 माह की अवधि की कयशक्ति अन्य बातें समान रहने पर जब वस्तु के मूल्य की राशि व्यक्ति को प्राप्त हो रही कयशक्ति की राशि के अनुपात में अधिक बढ़ जाती है, उस स्थिति को वस्तु की महंगाई या वस्तु पर महंगाई होना कहते है। महंगाई होने का निहित अर्थ है कि चीजे कम मिल पाने के कारण जीवन स्तर का गिरना गिरते जाना । स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से आज तक ओसतन 100 गुना मुल्य बढे है तथापि एक औसत भारतीय का जीवन स्तर 15–20 गुना बढा है, क्योंकि उसकी कय शक्ति इस अवधि में 1500–2000 गुना बढी है। तब यह कहना कहा तक न्यायसंगत होगा कि महंगाई बढ रही है महंगाई के विचार के यथार्थ को समझते हुए अब महंगाई बढ रही है की रटना को खत्म करना चाहिए। महंगाई सापेक्षिक शब्द है। जिसका कयशक्ति से सीधा सहसंबंध है।

कश्मीर समस्या के संदर्भ में आप द्वारा इस्लामवाद पर जो इलजाम लगाया गया है,उससे भी मैं पूर्ण सहमत हूँ। इस चीज को मैंने भी अपने एक लेख में बहुत जोरदार शब्दों में कहा था कि कश्मीर की समस्या क्षेत्र से जुडी समस्या श्रीलंका आयरलैड तिब्बत जैसी न होकर मजहब से जुडी समस्या है। इस विस्तृत लेख को गतवर्ष ही ज्ञानतत्व के किसी अंक में छापा गया था जैसा आपने लिखा है कि जहॉ इन्हे अन्य धर्मावलम्बी नहीं मिलते वहॉ आपस में ही मारकाट करने लगते हैं मुझे तो यह लगने लगा है कि इस्लाम की संस्कृति ही नही, इसका खुदा और खून भी दूसरो ंके खुदा और खून से जुडा होता है।

उत्तरः— आपने महंगाई की जितनी अच्छी विवेचना की है वह मेरे लिए भी मार्गदर्शन का काम करेगी। मैं अनुभव करता रहा हूँ कि मंहगाई संबंधी मेरे विचार आमतौर पर श्रोता यहॉ तक कि मेरे निकट के साथी भी समझ तो तुरंत जाते है तथा हॉ भी कर देते है किन्तु एक दो दिन के बाद ही वे फिर से मंहगाई का अस्तित्व स्वीकार करने लगते है। आपने बहुत गंभीरता से इस विषय पर लिखा है।

आपने एक मुसलमान होते हुए भी कश्मीर जैसे संवेदनशील मुददे पर अपने विचार लिखे वह भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप मेरे लिखे हुए विचारों में से कुछ ऐसे विचारों की भी विवेचना करे जिनसे आपको असहमति दिखती हो। मैं स्पष्ट कर दूँ कि ईमानदार समीक्षा मेरे लिए भी बहुत उपयोगी होगी तथा आपने वह योग्यता क्षमता और नीयत दिखती है।

कल्पेश याग्निक (दैनिक भास्कर से)

जरुरी है पाकिस्तानी आतंक के विरुद्ध इस जोश व दमखम को बनाए रखना
' अवसर उस तूफान की तरह है जिसका पता गुजर जाने के बाद ही चलता है।'

सर्जिकल स्ट्राइक के बाद एक नया खतरा पैदा हो गया है। यह पाकिस्तान से आने वाला खतरा नहीं है। बल्कि हमारे ही लोगों द्वारा फैलाया जा रहा खतरा है। और वह है देश को ढेरों तरह से सावधान करना। कुछ इस तरह से कि पूरी आशंका है कि हम फिर से धैर्य के नाम पर चुप रहने के दौर में पहुँच जाएँ। फिर दहशत, दरिंदगी और दर्द देने वाले पाकिस्तान के प्रति एकदम नरम पड़ जाए, और फिर खून खरावा झेलने पर विवश हो जाए। अचानक से सेना की प्रशंसा करते करते, कई बडे बडे लोग इस बात पर आते जा रहे हैं कि 'ध्यान रहे' यह बड़ी सैन्य लडाई में न बदल जाए। 'कहीं हम इस स्ट्राइक की ज्यादा खुशियां तो नहीं मना रहे। यह खुश होने की बात या अवसर नहीं है।

जब समूचा देश एक जूट है, नई उर्जा का अहसास कर रहा है– तब से कौन लोग हैं जो सावधान करने के नाम पर लगभग डरा रहे हैं? इनमें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ओहदों पर रह चुके विशेषज्ञों से लेकर कई तरह की विचारधाराओं से बंधे प्रभावी लोग है। इनमें से कई का उददेश्य निश्चित ही बहुत अच्छा होगा– किन्तु समय और सुर सही नहीं लगता।

इसकी शुरुवात उडी हमले के बाद से ही हो गई थी। एक शक्तिशाली वर्ग यह बात उठाने में, प्रचारित करने में सफल रहा कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी आतंक के मामले में कुछ कर नहीं पाते या करते ही नहीं है। तो निश्चित ही तथ्यात्मक रुप से सच बात थी क्योंकि पठानकोट आतंक के बाद मोदी ने किया क्या? पाकिस्तान को और अधिक भरोसे में लेने की गलती की। पाकिस्तानी जांच दल को एयरबेस पर जाने देने का जोखिम लिया। और रिपोर्ट में कुछ आता उसके पहले ही पाकिस्तानी टीवी चैनलों पर आ गया कि जांच करने गए अफसरों का मानना तो यह है कि हिन्दुस्तान ने खुद ही ऐसा हमला गढ दिया। फिर धोखा खाए देश को भी लगने लगा कि मोदी,चुनाव से पहले तो पाकिस्तान और आतंक पर दहाडते थे – अब चुप हैं। चुप से वह दूसरा वर्ग याद आया। इस तरह के विद्वानों ने मोदी मनमोहन तुलना की और सिद्ध कर दिया कि दोनों एक जैसे हैं। कागजी कारवाई करते हैं। जवाब नहीं देते। जवाब से एक तीसरी श्रेणी सामने आई। मुँहतोड जवाब दो। जिंगोइज्म। यह कहना बडा आसान होता है– कि टुकडे– टुकडे कर दो। और अनिवार्य भी लगता है क्योकि आपको रक्त से रंजित कर, अगले और नए शिकार की तलाश में निकल जाने वाले, किराये पर हत्या करने वालों को खुले घूमने देना तो अनेक निर्दोषों की जान से खेलना ही होगा।

किन्तु देश के स्तर पर फैसले ऐसे नहीं लिए जाते। समय लगा। पूरे दस दिन। और महीने किन्तु ठोस जानकारी के आधार पर सर्जिकल स्ट्राइक हुआ। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लिया ऐसा फैसला । और इंदिरा गांधी जैसा साहस दिखाने वाले प्रधानमंत्री के रुप में उभरे।

जबकि यह स्ट्राइक दो कारणों से 'अमार सोनार बांग्ला' जयघोष के बीच लिए इंदिरा गांधी के अति साहसी फैसले का अंशमात्र भी नहीं है।

पहला – जहॉ स्ट्राइक किया, वह कोई दाउद इब्राहिम के ऐशगाह वाला कराची का इलाका तो था नहीं। वह पाकिस्तान के अवैध कब्जे वाला कश्मीर का इलाका था। वास्तव में हमारा अपना कश्मीर। जिसे न जाने क्यों पीओके कहा जाता है? पाक ऑक्युपाइड कश्मीर। इसे हिन्दी में पाक अधिकृत कश्मीर बना डाला। 'अधिकृत' शब्द आते ही 'अधिकार' की खुशबू आने लगती है। मानों हम अनाधिकृत बात कर रहे हों। खैर।

दूसरा कारण है– यह कोई फुल ब्लोन वॉर तो है नहीं। बिजली की गति से की गई गजब की सैन्य कारवाई। एक्सट्रीम प्रिसिशन।

फिर भी मोदी की चर्चा चारों ओर सगर्व इसलिए हो रही है चूँकि मनमोहन सरकार के दस साल भयानक चुप्पी के रहे। चूँकि कुंठा से भर उठे हम। गुस्से से बौखला गया देश। किन्तु एक भी सैनिक को शौर्य दिखाने की छूट नहीं दी गई। और अवसर आए बहुत ही बडे अवसर न्याय की मांग भी थी। खून पुकार रहा था। किन्तु राजनीतिक नेतृत्व न जाने किस भ्रम,संशय,भय से बंधे दिखे। मुंबई में विकराल और वीभत्स दृश्य फैलाने वाले 26/11 के आतंकी हमें 60 घंटे बंधक बनाकर लहू बहाते रहे। वो अवसर सबसे बडा था, युद्ध कर, ध्वस्त कर देने का। फुल ब्लोन वॉर। और मनमोहन सिंह ही नहीं, अटल बिहारी वाजपेयी जैसा लार्जर देन लाइफ नेता भी कभी जवाबी हमला न कर सका।

संसद पर हमला, वैसा ही अवसर था। कारगिल युद्ध होते हुए भी पूर्ण विजय का कारण न बन सका। वह अवसर भी रह गया। इसलिए मोदी सरकार आज देशवासियों की नजरों में ताकतवर सरकार बनकर उभरी है। किन्तु प्रश्न मोदी का नहीं है। देश का है। यदि पाकिस्तान और उसके हत्यारे आतंकियों के विरुद्ध जोश ओ खरोश का यह माहौल ऐसा ही बनाए नहीं रखा गया, तो अनहोनी तय है। यदि दमखम का दौर जारी नहीं रखा, तो तबाही होगी ही। और विघ्नसंतोषियों का क्या? कोई सार्क के बहिष्कार को गलत ठहरा कर कह देगा कि इससे तो भारत ही अलग थलग पड जाएगा! कोई कहेगा पाकिस्तानी कलाकार तो आतंकी नहीं हैं। फिर कोई खिलाडियों मैचों की पैरवी करेगा। और कारोबार कर ही रहे हैं । सीमा पर फिर नरमी। फिर घुसपैठ। फिर धमाके।

यह सच और उचित है कि कलाकार खिलाडी कारोबारी पाकिस्तानी हैं कोई आतंकी नहीं। किन्तु समय की मांग है हर पाकिस्तानी को समूचे पाकिस्तान को उसके आवाम को इस सख्ती का अहसास होना ही चाहिए।

क्यों? क्योंकि यह भी एक स्थायी,उबाउ और थक चुका जुमला है कि पाकिस्तान की जनता को तो हिन्दुस्तान से मोहब्बत है। हम उन्हें क्यों आहत करें?

इसकी कडवी सच्चाई अलग है। यह सही है कि हमें कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे साधारण पाकिस्तानी नागरिक को परेशानी हो आहत करना तो दूर की बात । क्योंकि भारतीय होने का आधार ही मानवता है। किन्तु उन्हें हमसे कोई मोहब्बत नहीं है। यह कोई मानने नहीं देगा। किन्तु कूर सच यही है। क्योंकि मोहब्बत का अलग से कोई कारण भी तो नहीं है। हॉ, उन्हे हमसे नफरत भी नहीं है। और सबसे बडा सच पाकिस्तानी लोग अपने खुद के मुल्क से इतने त्रस्त हैं कि उनकी जिंदगी दोजख बन गई है। सरकारें बनना गिरना । कुछ दिन धमाके होते नहीं । तो ज्यादा डरने लगते हैं। कि अच्छे या बुरे तालिबान कहीं उनके मासूम बच्चों को मौत के घाट न उतार दें!

आतंक तो वो झेल रहे है– कोई क्या झेलेगा। इसलिए उनके पास हमें या किसी को भी मोहब्बत देने का न समय है, न रुझान। इसलिए उन्हें प्यार देंगे हम हिन्दुस्तानी । भरपूर स्नेह। और सम्मान। किन्तु अभी, इस मौत के मंजर में, किसी पर भी नरमी खतरनाक होगी। पाकिस्तान, आतंकियों को खत्म कर, एक सभ्य बने, असंभव है। किन्तु बनना ही होगा। क्योंकि कयामत के दिन सबको जवाब देना है। रहमत आमीन।

उत्तरः– आप सब जानते है कि मैं प्रतिदिन समसामयिक घटनाओं पर कुछ न कुछ प्रतिकिया व्यक्त करता रहता हूॅ। किन्तु पिछले एक दो माह से मैंने पाकिस्तान और कश्मीर के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा। यहॉ तक कि मैंने उडी घटना के बाद भी कोई प्रतिकिया नहीं दी तथा सर्जिकल स्ट्राइक के बाद भी नहीं। क्योंकि यह विषय ऐसा है जिसके सत्य तक पहुॅचना मेरे लिए संभव नहीं था। कौन सच बोल रहा है,कौन झूठ यह कैसे लिखा जाये। दूसरी बात यह भी है कि वर्तमान स्थितियों में पाकिस्तान को शत्रु माना जाये या विरोधी तक सीमित रखा जाये। जिस तरह पाकिस्तान का व्यवहार है उस अनुसार तो वह सिर्फ भारत सरकार के शत्रु तक सीमित न होकर सम्पूर्ण भारत के लिए शत्रु माने जाने योग्य है क्योंकि उसके आतंकी भारत में कहीं भी किसी की भी हत्या करे और पाकिस्तान की सरकार उसको संरक्षण दे तथा पाकिस्तान के नागरिक ऐसी सरकार का समर्थन करे यह शत्रुता पूर्ण कार्य है। फिर भी मुझे विश्वास था कि उचित परिस्थितियों में भारत सरकार उचित निर्णय लेगी और इसलिए मुझे अनावश्यक कोई सलाह नहीं देनी चाहिए। मैं एक विचारक हूॅ कोई साहित्यकार ,किसी का चारण या प्रशंसक नहीं। न तो मुझे किसी प्रकार वातावरण को गरम करने में कोई भूमिका अदा करनी चाहिए, न ही ठंडा करने में। इसलिए मैं चुप रहा और चुप हूॅ।

आपने पाकिस्तान के नागरिको की चर्चा की । पाकिस्तान एक मुस्लिम बहुल देश है जहॉ इस्लामिक कानून चलता है। हम पाकिस्तान के नागरिको के व्यवहार की बात तो बाद में करेंगे किन्तु पहले हम कश्मीर के मुस्लिम बहुमत के विचारों का परीक्षण तो कर ले। कश्मीरी मुसलमानों का व्यवहार पाकिस्तान के लोगों के लिए एक नमुना बन सकता है। अभी तो यहॉ तक स्थिति है कि भारत का मुसलमान भी अभी दुविधा में है। बहुत से लोग अब भी चुप है और प्रतिक्षा कर रहे है कि उन्हें खुलकर क्या कहना चाहिए। भारत के बहुत से मुसलमान पाकिस्तान के मामले में तो भारत की सरकार को सलाह देने के लिए आगे आ जाते है किन्तु वे कभी पाकिस्तान की सरकार की आलोचना में उतने आगे नहीं दिखते। मेरे विचार में इस समय भारत सरकार को नरम या गरम मामलों में कोई विशेष सलाह न देकर या तो समर्थन करना चाहिए या चुप रहना चाहिए। तब तक जब तक कोई विशेष और स्पष्ट घटना न हो जाये।

मैं मनमोहन सिंह अथवा अटल जी की आलोचना को भी अप्रासंगिक मानता हूॅ। उस समय तक न तो विश्व में पाकिस्तान इतना बदनाम हुआ था न ही मुस्लिम आतंकवाद इतना अलग थलग पडा था। उस समय पश्चिमी देशों का भी रुख इतना साफ नहीं था। मुझे लगता है कि उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए उस समय की सरकारों ने ठीक ही निर्णय लिये होंगे।

अंत में मैं भारत और कश्मीर के मुसलमानों से विशेष आग्रह करता हूॅ कि वे वर्तमान परिस्थितियों का लाभ उठाकर यह हिम्मत करें कि अब धर्म के आधार पर संगठित होने का अवसर समाप्त हो चुका है तथा हम

जहॉ भी है उन सबके साथ सहजीवन जीने की आदत डाल ले। धर्म सर्वोच्च नहीं, राष्ट्र भी सर्वोच्च नहीं, सर्वोच्च तो समाज होता है और समाज में सर्वोच्च आवश्यकता है सहजीवन की अवधारणा जिसमें निश्चित ही औसत हिन्दुओं की तुलना में औसत मुसलमान कमजोर दिख रहा है।

श्री पी. चिदम्बरम जी पर टिप्पणी

श्री पी. चिदम्बरम भारत के पूर्व गृहमंत्री तथा वित्तमंत्री रहे हैं। मैं उनकी प्रशासनिक क्षमता का विशेष प्रसंशक रहा हूॅ। वे हमेशा ही संतुलित तथा तर्कपूर्ण विवेचना करते रहे हैं। मैं उन्हें ध्यान से पढता हूॅ।

11 सितंबर को जनसत्ता में उन्होने वर्तमान भारत सरकार की आलोचना करते हुए एक बडा लेख लिखा जिसमें उन्होने न्यायिक सक्रियता का पुरजोर समर्थन किया। उन्होने पक्ष विपक्ष में जो कुछ लिखा उसकी मैं कोई समीक्षा नहीं कर रहा। इस संबंध में हमारे अलग अलग मत हो सकते हैं। किन्तु उन्होने एक महत्वपूर्ण लाइन लिखी ''सुप्रीम कोर्ट का फैसला ही कानून है। (देखिये संविधान का अनुच्छेद 141) कालेजियम अब कोई प्रस्ताव नहीं है बल्कि कानून है''। चिदम्बरम जी ने संविधान के अनुच्छेद एक सौ इकतालीस की बात कही। मेरे विचार से संविधान का उक्त अनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय के अन्तर्गत काम कर रहे उच्च न्यायालयों तक ही सीमित है, कार्यपालिका अथवा विधायिका के लिये नहीं है।

मुझे लगता है कि श्री चिदम्बरम जी भी यह बात अवश्य जानते होंगे कि उक्त अनुच्छेद न्यायपालिका तक सीमित है। फिर भी उन्होने यह बात क्या सोचकर लिखी यह समझ से परे है। हो सकता है कि अपनी बात को संविधान सम्मत सिद्ध करने के क्रम में उन्होने ऐसे भ्रम का सहारा लिया हो। यदि ऐसा है तो उनके सरीखे व्यक्तित्व के यह प्रयोग अनैतिक कार्य है। यदि भूलवश ऐसा हुआ तो स्थिति स्पष्ट होनी चाहिए। किन्तु यदि मेरी ही जानकारी अधूरी है या मैं ही उक्त अनुच्छेद का अर्थ ठीक नहीं समझ पा रहा तो हमारे पाठक मेरी भूल सुधार सकते हैं।

मेरे विचार से न्यायपालिका विधायिका तथा कार्यपालिका एक दूसरे के समकक्ष हैं। तीनों एक दूसरे के पूरक भी होते हैं और नियंत्रक भी। विधायिका कानून बनाती है, न्यायपालिका कानून के अनुसार न्याय करती है तथा कार्यपालिका कानून के अनुसार घोषित न्याय को कार्यांवित करती है। मैंने तो आज तक नहीं सुना कि न्यायपालिका को कानून बनाने का भी अधिकार प्राप्त है। आज कल न्यायपालिका यदाकदा जो प्रशासनिक आदेश देती भी है वह संविधान सम्मत न होते हुए भी विधायिका स्वीकार कर लेती है यह अलग बात है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि न्यायपालिका अन्य दोनों संवैधानिक इकाइयों से उपर है। यदि यह भ्रम है तो यह दूर होना चाहिये कि यह भ्रम चिदम्बरम जी को है या मुझे।

3 दैनिक भास्कर पंद्रह सितम्बर मे यह समाचार छपा है। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 2007 मे 15 सितम्बर के दिन को इंटरनेशनल डेमोक्रेसी डे घोषित किया था। इसका उददेश्य दुनिया भर मे लोकतांत्रिक मूल्यो और सिद्धान्तो को बढावा देना और लोगो को जागरूक करना हैं इसके तहत कोई भी व्यक्ति राजनीतिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक और जीवन से जुडे पहलुओ की बाते अभिव्यक्त कर सकता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हर साल क्वालिटी आंफ डेमोक्रेसी जानने के लिये हर साल लोकतांत्रिक देशो को रैकिंग दी जाती है। वर्ष 2015 मे 163 देशो की रैकिंग मे 9.93 स्कोर के साथ नार्वे प्रथम स्थान पर, आइसलैड स्वीडन, न्युजीलैड और डेनमार्क शीर्ष मे है। जबकि जर्मनी 13वे यूके सोलहवे अमेरिका बीसवे फ्रांस सताइसवे और भारत दस मे से 7.7 स्कोर के साथ पैतीसवे स्थान पर है। सत्तावादी शासन वाले देशो मे 3.14 के स्कोर के साथ चीन 136वे एंव 1.08 स्कोर के साथ उत्तर कोरिया 167 यानी अंतिम स्थान पर है।

लोकतंत्र के दो प्रकार होते थे, जिनमे एक प्रत्यक्ष दूसरा प्रतिनिधि था। प्रत्यक्ष लोकतंत्र वाले देशो मे ग्रीस भी था। जहां हर महत्वपूर्ण विषय पर मतदान करने के लिये लोग किसी एक जगह एकत्र होते थे।

आबादी बढने के कारण इस पद्धति मे परेशानी होने लगी। प्रतिनिधि लोकतंत्र ज्यादा प्रचलित है। इसमे लोग अपना प्रतिनिधि चुनते है जो सरकार चलाते है।

डेमोक्रेसी शब्द ग्रीक शब्द डेमोस से आया है जिसका मतलब लोगो से है। अमेरिकी संविधान मे डेमोक्रेसी शब्द का कहीं नही है। हमारे देश मे लोकतंत्र 1947 की आजादी के बाद आया लेकिन यह पहला प्रयोग नही था। दक्षिण भारत के चोल राजवंश मे एक हजार साल पहले चुनावी प्रकिया लागू थी ओर उसे लोकतांत्रिक पद्धति कहा जाता है। विश्व मे सबसे बडा संविधान भी हमारा है । उसे हिन्दी और अंग्रेजी मे हाथो से लिखा गया था तब टाइपिंग या प्रिंटिग की भूमिका नही थी।

समीक्षा– लोकतंत्र क्या है । यह विस्तृत चर्चा का विषय हैं। हमारे फेसबुक से जुडे विद्वान भूपत सूट, दिलिप मृदुल, नरेन्द्र सिंह जी आदि भी इस संबंध मे चिंतन करते रहे है। मेरे विचार मे लोकतंत्र वह शासन पद्धति है जिसमे व्यक्ति के प्रकृति प्रदत अधिकारो के साथ कोई भी अन्य किसी भी परिस्थिति मे कटौती नही कर सकता, तथा राज्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है। लोकतंत्र मे प्रकृति प्रदत अधिकारो को ही मौलिक अधिकार भी कहते है। वैसे तो यह अधिकार व्यक्ति स्वातंत्र माना जाता है। किन्तु पहचान के लिये ये चार भाग मे होते है। 1 जीने का अधिकार 2 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता 3 संपत्ति 4 स्वः निर्णय। कोई पांचवा अधिकार मौलिक अधिकार या प्राकृतिक अधिकार नही कहा जा सकता, जैसा कि अनेक देशो मे शिक्षा रोजगार, स्वास्थ, आदि को कह दिया जाता है।

हमारे अर्थात भारत के लिये इस संबंध मे विचारणीय है कि हम पैतीसवे नम्बर से प्रथम तक क्यो नही जा सकते। साथ ही यह भी कि हम दुनियां मे गंभीर विचारक माने जाते है । हम वर्तमान लोक तंत्र की तुलना मे कोई अधिक अच्छा मार्ग क्यो नही दुनियां को दिखा पाते। मेरे विचार मे नार्वे, स्वीडन, आदि देश जो उपर के नम्बर पर है उनमे और भारत के लोकतंत्र मे सिर्फ एक कमी है कि उन देशो मे संविधान संशोधन की प्रक्रिया मे आम जनता की भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भूमिका होती है। जबकि भारत मे तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त है । यदि भारत भी संविधान संशोधन के मामले मे तंत्र को प्राप्त असीम अधिकारों को सीमित करने की प्रक्रिया बना सके तो भारत भी अपनी स्थिति से आगे निकल सकता है। भारत लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित है जबकि नार्वे स्वीडन आदि देश आंशिक रूप से लोक नियंत्रित की दिशा मे बढे हुए है।

यह स्पष्ट है कि दुनियां मे अबतक लोकतंत्र का कोई संशोधित स्वरूप नही खोजा जा सका । मेरे विचार मे यह कार्य कठिन नही। सहभागी लोकतंत्र अर्थात लोक स्वराज्य प्रणाली लोकतंत्र से भी अधिक अच्छी प्रणाली सिद्ध हो सकती है। इस प्रणाली मे परिवार गांव और जिले को भी एक अधिकार प्राप्त आंतरिक संसद का स्वरूप देना होगा। अर्थात परिवार से लेकर संसद तक की सभी इकाइयां अपने अपने अधिकारो की सीमा मे स्वतंत्र होगी तथा सभी इकाईया अपने उपर की इकाइयो की पूरक होगी। यह काम बिल्कुल कठिन नही।

इस तरह हम भारतीय लोकतंत्र को थोडा सा संशोधित करके दुनियां मे आगे निकल सकते है । तथा हम लोकतंत्र मे थोडा सा संशोधन करके वर्तमान लोकतांत्रिक प्रकिया का विकल्प दे सकते है। भूपत जी ने फेसबुक मे लोकतंत्र पर एक बहस छेडी है । मै उस बहस का स्वागत करता हूँ।

वर्ण व्यवस्था का संशोधित स्वरूप

पिछले दिनो मैने वर्ण व्यवस्था पर एक रूप रेखा प्रस्तुत की थी । वर्तमान समय मे प्रत्येक बालक की क्षमता का टेस्ट स्कूलो के माध्यम से होता रहा है किन्तु प्रवृत्ति का टेस्ट कभी नही होता। न भारत मे न दुनियां मे कही और । प्रस्तावित योजना मे बालक की प्रारंभिक प्रवृत्तियो को चार भाग 1ज्ञान 2 शक्ति 3 सुविधा 4 सेवा मे बाटकर तदनुसार प्रारंभिक टेस्ट की व्यवस्था करनी है । यह पूरा टेस्ट बारह वर्ष की उम्र के पूर्व ही हो जाना चाहिये। टेस्ट मे उत्तीर्ण बालक उसी प्रकार की आगे की योग्यता वृद्धि के निमित्त ही भिन्न विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करेगा।

इस संबंध मे मेरा आगे का प्रस्ताव यह है कि जो बालक ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करेगा वही बालक भविष्य मे विधायिका के लिये चुनाव लड सकेगा। अन्य नही। विधायिका का काम नीति निर्धारण है। इसके लिये विशेष ज्ञान तथा त्याग की जरूरत होती है। भावना प्रधान, लोभी, आवेशी व्यक्ति नीति निर्माण मे बहुत अधिक घातक हो सकता है। इसी तरह न्यायिक पद भी इसी वर्ग के लिये आरक्षित कर देना चाहिये। क्योकि न्यायिक दायित्व के लिये भी विशेष ज्ञान और त्याग चाहिये। इसी तरह राष्टपति का पद भी इसी श्रेणी के लिये आरक्षित कर देना चाहिये।

कार्यपालिका के सभी पद द्वितीय श्रेणी के लिये आरक्षि हों । सेना पुलिस सहित मुख्य सचिव से लेकर तृतीय श्रेणी तक के पद इस श्रेणी के लिये आरक्षित हो सकते है। क्योकि इस दायित्व के लिये ज्ञान का सर्वोच्च महत्व न होकर सामान्य ज्ञान से भी काम चल सकता है। किन्तु विशेष कार्य कुशलता आवश्यक है। इन सब व्यक्तियो के पास शक्ति अर्थात पद रहेगा। ये सभी लोग उसी प्रकार की शिक्षा लेकर निकलेगे। अर्थपालिका तथा वित्तीय प्रबंधन के सभी पद तृतीय श्रेणी के लिये आरक्षित होंगे। जो लोग किसी परीक्षा मे पास नही होगे या परीक्षा ही नही देंगे वे चौथी श्रेणी अर्थात श्रमजीवी माने जायेगे।

चारो श्रेणियों की उपलब्धिया भी भिन्न भिन्न होगी। प्रथम श्रेणी के लोगो को सर्वोच्च सम्मान मिलेगा। ऐसे लोग श्रेष्ठता के कम मे भी उपर रहेगे। सर्वोच्च ज्ञानी किसी भी परिस्थिति मे सर्वोच्च शासक से अधिक सम्मान प्राप्त रहेगा। द्वितीय श्रेणी के व्यक्ति के पास सर्वोच्च शक्ति रहेगी। तृतीय श्रेणी वाले के पास अधिकाधिक सुविधा होगी तथा श्रमिक को पूरी चिंता मुक्ति मिलेगी। किन्तु यह आवश्यक होगा कि एक श्रेणी के व्यक्ति को सर्वोच्च सम्मान ही मिलेगा पद धन या निश्चिंतता नही। उसका जीवन बिल्कुल साधारण होगा। सुविधा के नाम पर वह साधारण सुविधा से अधिक नही पा सकता। संग्रह तो वह कर ही नही सकेगा। दूसरी श्रेणी का व्यक्ति दूसरी श्रेणी का सम्मान तथा सर्वोच्च सुविधा का पात्र होगा किन्तु संग्रह नही कर सकता। तीसरी श्रेणी का व्यक्ति सम्मान के हिसाब से तो तीसरा रहेगा तथा शक्ति भी नही रहेगी किन्तु उसे अधिकतम धन सम्पत्ति संग्रह करने की छूट रहेगी। सुविधा के हिसाब से भी वह दूसरे कम के बाद का रहेगा। चौथे कम का व्यक्ति चिन्ता मुक्त रहेगा। उसकी सभी मूल भूत आवश्यकताएं समाज पूरी करेगा। सम्मान शक्ति सुविधा के सब मामलो मे वह चौथे कम मे रहेगा।

इस सम्पूर्ण व्यवस्था मे एक प्रावधान और सोचना पडेगा कि किसी निश्चित उम्र के बाद किसी बालक या वृद्ध मे कोई विशेष योग्यता दिखे तो उसके कम बदलने का तरीका क्या होगा? मेरे विचार से यह कोई बडा प्रश्न नही तथा उसका मार्ग निकल सकता है।

मै समझता हूँ कि मेरी प्रस्तावित व्यवस्था वर्तमान वर्ण व्यवस्था का ही संशोधित स्वरूप है। मेरे विचार मे आज पूरी दुनियां मे प्रवृत्ति के आधार पर वर्ग निर्माण का कोई तरीका नही है जो हाना चाहिये।परिणाम स्वरूप हर आदमी सब प्रकार की दौड मे भी शामिल है तथा सम्मान शक्ति धन सम्पत्ति सब कुछ अपने पास ही इकठठी कर लेना चाहता है। एक अजीव सी छीना झपटी का वातावरण बना हुआ है । इस वातावरण से मुक्ति मिलनी चाहिये।

मंथन क्रमांक –1

विषय–समाज और राज्य मे अहिंसा और सत्य

व्यक्ति और समाज अन्तिम इकाई माने जाते है। दोनो एक दूसरे के पूरक होते है। व्यक्तियों से मिलकर ही समाज बनता है तथा समाज की व्यवस्था से ही व्यक्ति का जन्म होता है। व्यक्ति की दो भूमिकाए होती है 1 अधिकार 2 कर्तब्य । स्वतंत्रता व्यक्ति का अधिकार होता है और सहजीवन व्यक्ति का कर्तब्य।

व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिये समाज एक शक्ति सम्पन्न इकाई का गठन करता है। यही इकाई राज्य होती है । राज्य कभी संप्रभुता सम्पन्न नही हो सकता क्योकि राज्य का गठन, शक्ति तथा दायित्व तो समाज द्वारा ही दिये जाते हैं। समाज ही संप्रभु इकाई होती है।

राज्य का गठन व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी के लक्ष्य के लिये होता है। इस तरह सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है तथा अन्य सभी जन कल्याण के कार्य उसके कर्तब्य । विदित हो कि दायित्व के लिये राज्य समाज के प्रति उत्तरदायी होता है जबकि कर्तब्य उसके स्वैच्छिक होते है।

सुरक्षा और न्याय राज्य का लक्ष्य होता है और अहिंसा तथा सत्य मार्ग । सुरक्षा और न्याय की लक्ष्य प्राप्ति के लिये अहिंसा और सत्य की बलि चढाई जा सकती है। किन्तु अहिंसा और सत्य के लिये सुरक्षा और न्याय के साथ कोई समझौता नही हो सकता। दूसरी ओर व्यक्ति को सहजीवन का प्रशिक्षण देना समाज का दायित्व होता है तथा सुरक्षा और न्याय कर्तब्य । समाज सुरक्षा और न्याय के लिये अहिंसा और सत्य के साथ कोई समझौता नही कर सकता किन्तु अहिंसा और सत्य के लिये न्याय और सुरक्षा को छोड सकता है।

व्यक्ति की स्वतंत्रता को राज्य या समाज उसकी सहमति के बिना तब तक सीमित नही कर सकता जब तक उस व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा का अतिक्रमण न किया हो। किसी अन्य व्यक्ति की स्वतंत्रता का उलंघन अपराध होता है, तथा ऐसे अपराध से व्यक्ति को सुरक्षित रखना राज्य का दायित्व होता है। राज्य को ऐसा कोई अधिकार नही होता कि वह व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता की कोई सीमा बना सके तथा उसे उस सीमा मे रहने के लिये मजबूर कर सके जब तक वह किसी अन्य की सीमा के लिये खतरा उत्पन्न न करे। यदि राज्य कभी उच्श्रृंखल होने लगे तो समाज का कर्तब्य है कि वह राज्य को अपनी सीमा मे रहने के लिये मजबूर करे और यदि वह फिर भी न माने तो समाज अल्प काल के लिये आपात्काल घोषित करके राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था अपने हाथ मे ले ले, तथा यथाशीघ्र नई व्यवस्था बना दे। ऐसी विशेष परिस्थिति मे राज्य की भी सम्पूर्ण शक्ति समाज के पास आ जाती है तथा समाज ऐसे आपात्काल मे सुरक्षा और न्याय के लिये अहिंसा और सत्य की भी बलि चढा सकता है। किन्तु ध्यान रहे कि ऐसी परिस्थिति सिर्फ आपात्काल के लिये ही है तथा अल्पकालिक ही है अन्यथा सामान्यतया समाज अहिंसा और न्याय के साथ कोई समझौता नही कर सकता।

जब भारत गुलाम था तब स्वतंत्रता संघर्ष के समय हिंसा या अहिंसा मार्ग था। उस समय भारतीय समाज व्यवस्था के लिये आपात्काल था। अब भारत स्वतंत्र है । ऐसी स्थिति मे समाज किसी भी रूप मे अहिंसा और सत्य के विपरीत नही जा सकता। सहजीवन का प्रशिक्षण देना समाज का दायित्व है तथा न्याय और सुरक्षा राज्य का दायित्व। दुर्भाग्य से राज्य अपने दायित्व और कर्तब्य का अंतर नही समझ पा रहा। यही कारण है कि अहिंसा और सत्य के मामले मे भी समाज मे भ्रम फैल रहा है।

नोट– अगले सप्ताह मंथन का विषय बेरोजगारी होगा।

प्रश्नोत्तर

1 नरेन्द्र सिंह जी

प्रश्नः– समस्या के अनुपात की तुलना में दण्ड की व्यवस्था, भौतिक न्याय की स्थापना का सिद्धांत प्रतिपादित करती है । आपका सुझाया विचार इसका एक विकल्प हो सकता है। जो मानवतावादी इसे क्रूर कहें वे न्याय की स्थापना का कोई विकल्प दें। विकल्प की तुलना के अभाव में मैं तो इससे सहमत हूँ। प्रश्न इतना है कि उस समय राज्य का ढॉचा अपने नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी हो अन्यथा क्रूर राज्य या उसके संचालक इस शक्ति से भी न्याय का दमन ही करेंगे।

उत्तरः– राज्य का अर्थ स्पष्ट करना होगा। कुछ लोग सत्तारुढ इकाई को ही राज्य मानते है। कुछ लोग संसद को राज्य मानते है । कुछ लोग सम्पूर्ण तंत्र को राज्य मानते है। कुछ ऐसे भी लोग है जो संविधान को ही शासक मानते है। राज्य और शासक लगभग समानार्थी शब्द है।

नियोक्ता तो समाज होता है। सिद्धांत रुप में नियुक्त संविधान होता है। किन्तु भारत के विकृत लोकतंत्र में संविधान समाज द्वारा नियुक्त न होकर संसद मात्र ही नियुक्त होती है तथा संविधान समाज

द्वारा नियुक्त न होकर संसद उसकी नियोक्ता बन जाती है। इसका अर्थ हुआ कि संसद की तानाशाही से सतर्क रहने की जरुरत है, क्योंकि संसद ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार रखती है। प्रस्तावित व्यवस्था एक बार लागू हो जाने के बाद उसमें संसद की भूमिका शून्यवत है तथा उसमें न्यायपालिका की कार्यपालिका के समकक्ष भूमिका भी है तथा हस्तक्षेप भी। इसलिए राज्य द्वारा इस कानून के दुरुपयोग की संभावना न के बराबर हैं।

आपने दण्ड की मात्रा की चर्चा की। मेरे विचार में एक सिद्धांत है कि दण्ड की मात्रा जितनी कठोर होगी उतनी ही धुर्तों की शक्ति मजबूत और प्रभावी होगी। दण्ड की मात्रा कम होगी तो अपराध करने वालो का प्रतिशत बहुत बढ जायेगा। जिसमें शरीफ लोगों का प्रतिशत बहुत होगा और धुर्तों का कम। लेकिन दण्ड की मात्रा बहुत अधिक होगी तो शरीफों का प्रतिशत शून्य हो जायेगा और धुर्तों का प्रतिशत बहुत अधिक। यह स्थिति भी अच्छी नहीं होगी। पिछले एक दो वर्षो से बलात्कार को बहुत ज्यादा गंभीर दण्डनीय बना दिया गया। इसके दुष्परिणाम हुए। धुर्त महिलाये और पुरुष इस कठोर दण्ड व्यवस्था का बहुत अधिक दुरुपयोग करने लगे। गांजा, अफीम, हेरोइन आदि अब भी नहीं रोके जा सके। ई सी एक्ट में भी बहुत कठोर दण्ड व्यवस्था थी। उसका भी बहुत दुरुपयोग हुआ। जब हत्या और अफीम या हेरोइन के दण्ड एक समान ही होंगे तो हत्या करने का विकल्प चुनना आसान हो जायेगा। आप देखेंगे कि पिछले एक वर्ष में बलात्कार की घटनाओं के साथ हत्याओं का प्रतिशत बहुत तेजी से बढा है। आदर्श स्थिति यह होगी कि दण्ड की मात्रा सन्तुलित हो, साथ ही दण्ड मिलने का प्रतिशत बढे। अर्थात वर्तमान समय में अपराधों में दण्ड का प्रतिशत कुल मिलाकर एक से भी कम है यह प्रतिशत एक से बढ़कर पचास होना चाहिए। वर्तमान स्थिति तो यह है कि यह प्रतिशत एक से बढकर दो भी नही हो पा रहा। मेरे प्रस्ताव से यह प्रतिशत नब्बे तक पहुँच सकता है। अर्थात गुप्त मुकदमा प्रणाली के बाद वास्तविक अपराधियों के निर्दोष छुटने की संभावना नगण्य हो जायेगी।

2 सुनिल कुमार

प्रश्नः—यदि शाहबुददीन जेल से छूटने के बाद कोई गंभीर अपराध करता है तो यह विचार करना होगा कि इसका दोषी कौन? न्यायपालिका या कार्यपालिका अर्थात् पुलिस?

उत्तरः—बाहुबली के निर्दोष घोषित होने में न पुलिस दोषी है न हीं न्यायपालिका। सच्चाई यह है कि इसमें भारत का कानून दोषी है। बिना गवाही के किसी को दण्डित नहीं किया जा सकता और गवाह डर के मारे गवाही देगा नहीं। भारत में पश्चिम का एक सिद्धांत मान लिया गया है कि चाहे सौ अपराधी छुट जाये किन्तु किसी निरपराध को सजा नहीं मिलनी चाहिए। यह सिद्धांत ही भारत के लिए दोषी है। सच्चाई यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपराधी होते हुए भी निर्दोष सिद्ध होता है तो वह वास्तव में पीडित के साथ अन्याय है। पश्चिम का सिद्धांत बनाने वाले देशों ने पुलिस और न्यायालय को कभी ओवरलोडेड नहीं किया। उनके पास हर मामले की विवेचना के लिए पर्याप्त समय और साधन है। भारत ने कानून व्यवस्था के सिद्धांत तो पश्चिम का मान लिया किन्तु साथ ही पुलिस और न्यायालय को इतना अधिक ओवर लोडेड कर दिया कि उनके पास विवेचना के लिए पर्याप्त समय और साधन ही नहीं है। इस संबंध में मेरा सुझाव है कि वर्तमान में प्रचलित कानूनों में से पंचानवे प्रतिशत अनावश्यक कानून हटा दिये जाये तो इससे पुलिस और न्यायालय की कार्यक्षमता कई गुना अधिक बढ जायेगी।

सूचना

हमारे मित्रों की सलाह पर विचार मंथन के लिये फेसबुक तथा वाटसअप के व्यवस्थित उपयोग की योजना बनी है। प्रारंभ में बावन विषय निश्चित करके प्रत्येक पर सप्ताह के एक दिन में उस विषय पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया जायगा। अन्य मित्र भी उक्त विषय पर अपने विचार देंगे। आपस में प्रश्नोंत्तर भी चलेगा। एक सप्ताह बाद विषय